इकाई 3 पर्यावरण और ज्योतिष

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 पर्यावरण और ज्योतिष

3.2.1 पर्यावरण का परिचय

3.2.2 ज्योतिष शास्त्र एवं पर्यावरण

3.2.3 पर्यावरण प्रदूषण

3.3 भूस्थानीय पर्यावरण, जलीय पर्यावरण, आकाश एवं वायु सम्बन्धी पर्यावरण एवं ज्योतिष

3.3.1 पर्यावरण का मानव जीवन पर प्रभाव

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 उपयोगी पुस्तकें

3.7 बोध प्रश्न

3.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- पर्यावरण के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- ज्योतिष शास्त्र में विद्यमान पर्यावरण विषयक अंशों का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- पर्यावरण प्रदूषण के बारे में जानेंगे।
- ज्योतिष शास्त्रीय पर्यावरण के विभिन्न प्रकार एवं उनके संतुलन में ज्योतिष शास्त्र की भूमिका से अवगत होंगे।
- पर्यावरण का मानव पर पड़ने वाले प्रभाव एवं ज्योतिष के पर्यावरण विषयक महत्व से अवगत होंगे।

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई का शीर्षक **पर्यावरण और ज्योतिष** है। आप सभी ज्योतिष शास्त्र में विशेष रुचि रखते है ऐसा मेरा विश्वास है । वस्तुतः ज्योतिष शास्त्र मानव के प्रत्येक पक्ष में उपकारक है । ज्योतिष शास्त्र के तीनों स्कन्ध ज्ञान के अथाह भंडार हैं। इसी क्रम में पर्यावरण हेतु ज्योतिष शास्त्र की उपयोगिता अत्यंत मुख्य है । हम सभी जानते हैं कि पर्यावरण का हमारे जीवन में बहुत अधिक महत्व है ।पर्यावरण के असंतुलन से मानव जीवन भी असंतुलित हो जाता है । वर्तमान काल में तो आज यह स्थिति है कि पर्यावरण के प्रति विशेष जागरूकता की आवश्यकता है इसी का परिणाम है कि जल दिवस (22 मार्च), पृथ्वी दिवस (22 अप्रैल), जैव विविधता दिवस (22 मई) पर्यावरण दिवस (5 जून), ओजोन दिवस (16 सितंबर), आदि मनाये जाते हैं।

पर्यावरण के प्रति जागरुकता बढ़ाने और फैलाने के लिए विश्व भर में प्रयास किए जा रहे है जिससे की मानव के साथ साथ पशु पक्षी आदि का भी जीवन बचाया जा सके जो हमारे पर्यावरण के घटक है।ज्योतिष शास्त्र प्रत्यक्ष शास्त्र होने से ही आगे आने वाले संकट के ही माध्यम से बता सकता है की पर्यावरण पर किस तरह का संकट आ सकता है उसका उपाय क्या होगा क्योंकि पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव ग्रहो के कारण ही होते है

ज्योतिष शास्त्र अपने प्रारम्भ से ही हमें पर्यावरण विषयक ज्ञान एवं उसके संतुलित हेतु संहिता आदि के ग्रन्थों से हमारा मार्ग प्रशस्त करता आ रहा है । प्रस्तुत इकाई में हम पर्यावरण और ज्योतिष शास्त्र के बारे में अध्ययन करेंगे।

3.2 पर्यावरण और ज्योतिष

ज्योतिष शास्त्र में पर्यावरण का विशिष्ट स्थान है। पर्यावरण के विभिन्न प्रकार को हमने उपर्युक्त बिन्दु के माध्यम से जाना। पर्यावरण के संतुलन के लिए ज्योतिष शास्त्र हमारा सदैव मार्गदर्शन करता है चाहे वह प्राकृतिक पर्यावरण हो या नैसर्गिक पर्यावरण हो इन सबका संतुलन ज्योतिष शास्त्र में किया गया है। ज्योतिष के अनुसार यदि हम पर्यावरण की उत्पत्ति पर विचार करें तो हम सभी जानते हैं कि सृष्टि उत्पत्ति के साथ ही पर्यावरण की उत्पत्ति भी मानी जाती है, ज्योतिष शास्त्र प्रत्यक्ष शास्त्र माना जाता है जिसके प्रत्यक्ष प्रमाण सूर्य और चंद्रमा है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार सृष्टि उत्पत्ति इस प्रकार बताई गई है –इसके अनुसार सृष्टि के आदिकाल में इस ब्रह्माण्ड में परमब्रह्म रूपी परमात्मा भगवान् वासुदेव की अंशरूपी सत्ता विराजमान थी। सामान्यतया वासुदेव पद से **"वासुदेवस्यापत्यं पुमान् वासुदेवः"** इस व्युत्पत्ति के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण का बोध होता है। परन्तु **"वसति विश्वमखिलमस्मिन्निति"** अर्थात् जिसमें पुरा विश्व ही निवास करता है या **"विश्वस्मिनखिले वसतीति वासुः''** के अनुसार इस पूरे विश्व में निवास करने वाले परम विश्वप्रकाशक तथा विश्वव्यापक परमब्रह्म का स्वरूप भी सिद्ध होता हैं। यद्यपि श्रीमद्भागवत के **''कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्''** उपदेश वचन के अनुसार श्रीकृष्ण भी परमब्रह्म स्वरूप ही सिद्ध होते हैं। परन्तु साक्षात् द्वापर युग में इनकी प्रत्यक्ष उत्पत्ति होने के कारण समस्त विश्व के कर्ता के रूप में इस स्वरूप का उपयोग नहीं करते हुए पूर्वोक्त युक्तिजन्य परमब्रह्मरूपी वासुदेव का ग्रहण ही व्याख्याकार लोग स्वीकार करते हैं। अतः सृष्ट्यारम्भ काल में इस परमब्रह्म सच्चिदानन्द विश्वव्यापक भगवान् के अंशरूप प्रधानपुरुष (पुरुषोत्तम) जो अव्यक्त (अतिन्द्रिय होने के कारण सामान्य चक्षुः से न दिखाई देने वाला), निर्गुण (सत्त्व, रज, तमरूपी तीनों गुणों से रहित), शुद्धस्वरूप (सर्वदोष रहित), पच्चीस विकृति आदि से रहित (16 विकृति 7 प्रकृति की विकृतियाँ 1 मूल 1 जीव), अव्यय (जिसका कभी नाश न हो अर्थात् सर्वदा विद्यमान रहने वाला), प्रकृति के अन्तर्गत ही विराजमान रहने वाला, सर्वव्यापी भगवान् संकर्षण (वासुदेव के अंश रूप) ने सर्वप्रथम जल का सृजन कर उस सृजित जल में शक्ति विशेष रूपी वीर्य को निक्षिप्त किया। भगवान् संकर्षण द्वारा जल में निक्षिप्त होते ही शक्ति विशेष रूपी वीर्य जल के संयोग से गोलाकार चारों ओर से अन्धकार से ढका हुआ अण्डस्वरूपाकार तेज स्वरूप एक स्वर्णपिण्ड की उत्पत्ति हुई जिसके गर्भ से नित्य सनातन रूप में विद्यमान रहने वाले भगवान् अरिरूद्ध साक्षात् प्रकट हुए –

वासुदेवः परब्रह्म तन्मूर्तिः पुरुषः परः।
अव्यक्तो निर्गुणः शान्तः पंचविंशात्परोऽव्ययः।
प्रकृत्यन्तर्गतो देवो बहिरन्तश्च सर्वगः।
संकर्षणोऽपः सृष्ट्वादौ तासु वीर्यमवासृजत्।।

तदण्डमभवद् हैमं सर्वत्र तमसा वृत्तम्।
तत्रानिरूद्धः प्रथमं व्यक्तीभूतः सनातनः।

(सूर्यसिद्धान्त भूगोलाध्याय श्लोक संख्या 12–14)

इस प्रकार आपने जाना कि वासुदेवांश संकर्षण के द्वारा वीर्य एवं जल के संयोग से भगवान् अनिरूद्ध प्रकट हुए। इन्हीं को वेदों में भगवान् हिरण्यगर्भ के नाम से पढ़ा गया है। आदिभूतत्वात् (सर्वप्रथम उत्पन्न होने के कारण) आदित्य एवं जगत् की उत्पत्ति करने के कारण इन्हें ही सूर्य भी कहा गया है (प्रसूत्या सूर्य उच्यते)। यथा–

हिरण्यगर्भो भगवानेषच्छन्दसि पठ्यते।
आदित्यो ह्यादिभूतत्वात् प्रसूत्या सूर्य उच्यते।।

(सूर्यसिद्धान्त भूगोलाध्याय श्लोक संख्या 15)

आप सबको यह स्पष्ट हो गया होगा कि स्वर्णाण्ड से उद्भूत भगवान् अनिरूद्ध का नाम ही हिरण्यगर्भ, आदित्य एवं सूर्य भी है। यह सूर्य समस्त लोक से अन्धकार का नाशक एवं स्वयं प्रकाश स्वरूप है यही भूतभावन अर्थात् सकल चराचरों की उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश का कारक है। वेद, पुराण तथा दर्शन शास्त्रों में इसे ही महान् शब्द से सम्बोधित किया गया है। वेदों में ऋग्वेद इसका मण्डल, सामवेद रश्मियाँ तथा यजुर्वेद स्वरूप है इस प्रकार वेदत्रयात्मक यह भगवान् सूर्य, काल का ज्ञान कराते हुए काल की आत्मा एवं काल का कारण भी है। यह ब्रह्माण्डरूपी रथ में विराजमान होकर संवत्सर रूपी बारह मासात्मक चक्र (पहिया) की सहायता से गायर्त्यादि छन्दरूपी सात घोड़ों पर सवार होकर पूरे विश्व का भ्रमण करता हुआ तीनों लोकों को प्रकाशित कर काल का बोध कराता है। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार सूर्य ही परमब्रह्म रूप में सर्वदा विद्यमान रहता है। इसी वेद अंशरूप संकर्षण से अनिरूद्धादि की उत्पत्ति सूचित है। यह जगत् की उत्पत्ति में समर्थ है तथा समग्र विश्व इसी में प्रतिष्ठित है सृष्टिक्रम में सर्वप्रथम भगवान् अनिरूद्ध में विश्वसृष्टि के निमित्त सर्वशक्ति सम्पन्न अहंकार तत्त्वरूप ब्रह्मा को उत्पन्न किया तथा इस स्वोत्पादित ब्रह्मा को विश्वोत्पादन पद्धति के रूप में वेदों का वरदान देते हुए पूर्वोक्त स्वर्णाण्ड के गर्भ में प्रतिष्ठापित कर यह आदेश दिया कि **''अवस्थेन त्वया विश्वानि स्रष्टव्यानि''** यहीं स्थित होकर तुम जगत् की सृष्टि करो तथा स्वयं विश्व को प्रकाशित करते हुए भ्रमण में संलग्न हो गये। यथा–

तस्मै वेदान् वरान् दत्त्वा सर्वलोकपितामहम् ।
प्रतिष्ठाप्याण्डमध्येऽथ स्वयं पर्येति भावयन्।।

(सूर्यसिद्धान्त भूगोलाध्याय श्लोक संख्या 21)

इस प्रकार आपने पढ़ा कि अनिरूद्ध ने ब्रह्मा की उत्पत्ति कर उनको सृष्टि का अधिकार प्रदान किया। सृष्टि का अधिकार प्राप्त करने के बाद अहंकारमूर्ति ब्रह्मा के मन में सृष्टि की ईच्छा जागृत हुई और इसी क्रम में ब्रह्मा के मन से सर्वप्रथम चन्द्रमा का तथा दोनों नेत्रों से तेजरूपी सूर्य का प्रादुर्भाव हुआ। इसीलिए वेदों में भी **"चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत''** यह उक्ति निरूपित है। पुनः इस सृष्टि प्रक्रिया के अन्तर्गत ब्रह्मा के मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, तथा जल से पृथिवी केद्वारा एक–एक गुणों की वृद्धि से इन पंचमहाभूतों की उत्पत्ति हुई। पुनः इन पंचमहाभूतों के द्वारा अग्नि तत्त्व से भौम (मंगल), पृथ्वी तत्त्व से बुध, आकाश तत्त्व से बृहस्पति, जल तत्त्व से शुक्र एवं वायु तत्त्व से शनि की उत्पत्ति होकर ग्रहमण्डल की रचना हुई। सूर्यसिद्धान्त में इसका निम्न प्रकार से प्रतिपादन किया गया है–

अथ सृष्ट्यां मनश्चक्रे ब्रह्माऽहंकारमूर्तिभृत् ।
मनसश्चन्द्रमा जज्ञे सूर्योऽक्ष्णोस्तेजसां निधिः ।।
मनसः खं ततो वायुरग्निरापो धराक्रमात्।
गुणैकवृद्ध्या पंचेति महाभूतानि जज्ञिरे।।
अग्नीषोमी भानुचन्द्रौ ततस्त्वंगारकादयः ।
तेजोभूखाम्बूवातेभ्यः क्रमशः पंच जज्ञिरे।।

(सूर्यसिद्धान्त भूगोलाध्याय श्लोक संख्या 22–24)

सूर्यादि सात ग्रहों की सृष्टि के अनन्तर ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड गोलरूपी स्वयं को बारह समान भागों में विभक्त कर मेषादि राशियों के रूप में तथा पुनः सत्ताईस समान भागों में विभक्त कर अश्विन्यादि नक्षत्रों के रूप में प्रातिष्ठापित किया। इस प्रकार ब्रह्माण्ड के द्वादशांश रूपी राशि एवं सप्तविशांश रूपी नक्षत्र स्थित हुए। ग्रह–नक्षत्र–राशियों की सृष्टि करने के बाद स्रष्टा ब्रह्मा ने उत्तम–मध्यम–अधम रूपों में गुणों के नियमानुसार सत्त्व–रज–तम के भेद से देव, मनुष्य, दानव, पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि सहित सकल चराचरों की रचना की। इसमें सतोगुण प्रधान देवता, रजोगुण प्रधान मनुष्य एवं तमोगुण प्रधान राक्षसों की सृष्टि सम्पन्न हुई।इसी सृष्टि में पर्यावरण विद्यमान है अतः सृष्टि के आरंभ काल से ही पर्यावरण की उत्पत्ति मानी जाती है।

3.2.1 पर्यावरण परिचय

पर्यावरण शब्द संस्कृत के 'परि' उपसर्ग (चारों ओर) और 'आवरण' से मिलकर बना है जिसका अर्थ है ऐसी चीजों का समुच्चय जो किसी व्यक्ति या जीवधारी को चारों ओर से आवृत्त किये हुए हैं। वेदों में पर्यावरण हेतु परिधि, परिभू, परिवृत्त आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

पर्यावरण की परिभाषा को यदि हम जाने तो –

विश्व शब्दकोश के अनुसार यदि हम पर्यावरण का अर्थ समझने का प्रयास करे तो –"पर्यावरण उन सभी दशाओं, प्रणालियों तथा प्रभावों का योग है जो जीवों तथा धरती पर उनकी प्रजातियों के विकास एंव मृत्यु को प्रभावित करता हैं।"

पर्यावरणविद सी.सी. पार्क ने पर्यावरण को परिभाषित करते हुये इस प्रकार से कहा है कि – "मनुष्य एक विशेष समय पर जिस सम्पूर्ण परिस्थितियों से धिरा हुआ है उसे पर्यावरण या वातावरण कहा जाता है। "

पारिस्थितिकी तंत्र और भूगोल में यह शब्द अंग्रेजी के environment के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। पर्यावरण उन सभी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारकों की समष्टिगत एक इकाई है जो किसी जीवधारी अथवा पारितंत्रीय आबादी को प्रभावित करते हैं तथा उनके रूप, जीवन और जीविता को तय करते हैं। पर्यावरण वह है जो कि प्रत्येक जीव के साथ जुड़ा हुआ है हमारे चारों और वह हमेशा व्याप्त होता है। सामान्य अर्थों में देखा जाय तो पर्यावरण हमारे जीवन को प्रभावित करने वाले सभी तत्वों जैसे जैविक और अजैविक, तथ्यों और प्रक्रियाओं, घटनाओं के द्वारा निर्मित एक इकाई है। पर्यावरण हमारे चारों ओर व्याप्त है और हमारे जीवन की सभी घटनाएं पर्यावरण के अन्दर सम्पादित होती है। मानव समुदाय अपनी समस्त क्रियाओं से इस पर्यावरण को भी प्रभावित करती हैं। इस प्रकार एक जीवधारी और पर्यावरण के बीच अन्योन्याश्रय सम्बन्ध होता है।

पर्यावरण के जैविक संघटकों में सूक्ष्म जीवाणु से लेकर मानव पर्यंत, सभी जीव–जंतु और पेड़–पौधे आ जाते हैं और इसके साथ ही उनसे जुड़ी सारी जैव क्रियाएँ और

प्रक्रियाएँ भी । अजैविक संघटकों में जीवन रहित तत्व और उनसे जुड़ी प्रक्रियाएँ आती हैं, जैसेः चट्टानें, पर्वत, नदी, हवा और जलवायु के तत्व इत्यादि ।

पर्यावरण का आधुनिक स्वरूप –

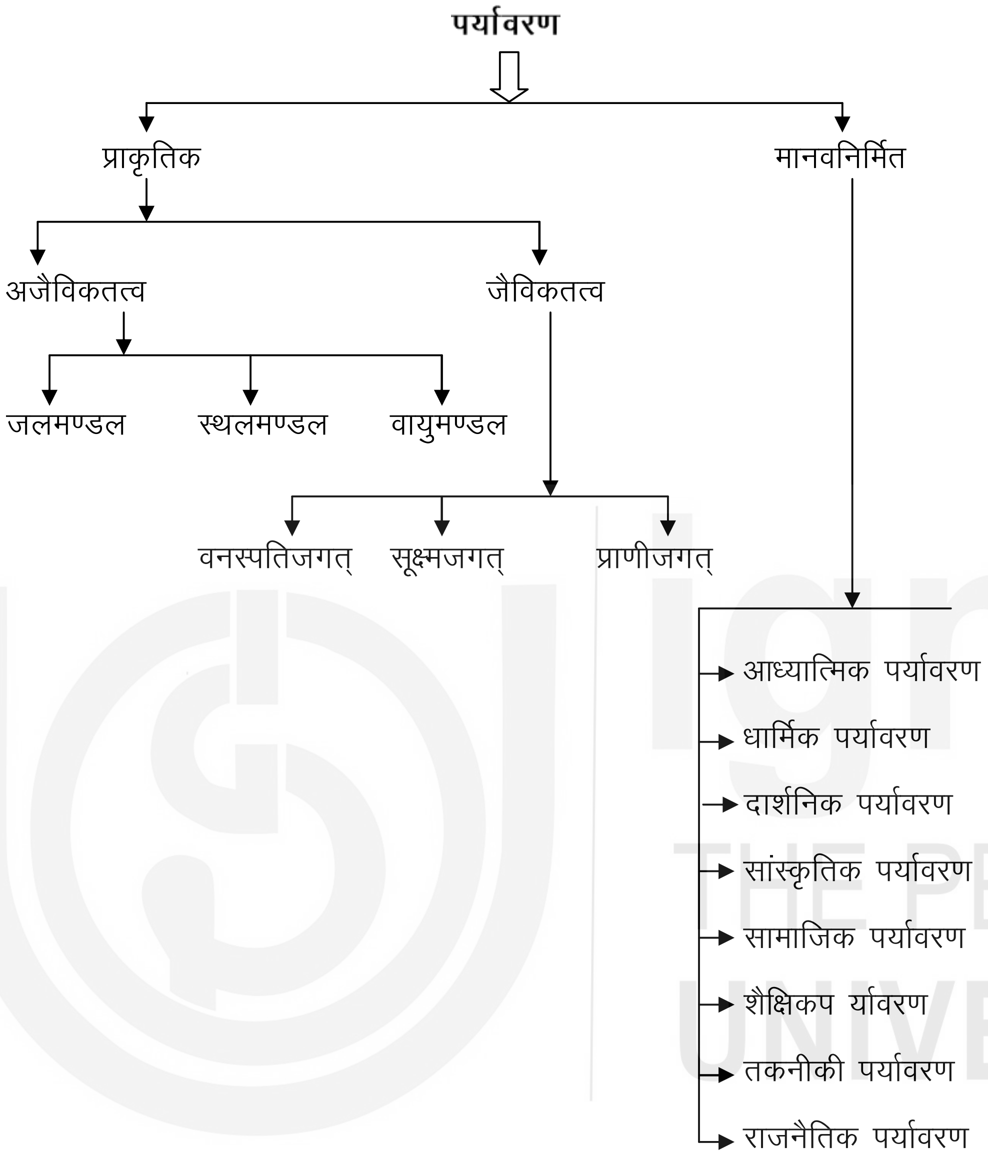

1. **स्थल मण्डल** –जलतल से ऊँचा उठा हुआ भाग स्थल मण्डल है और इसके अन्तर्गत धरातल का लगभग 29 प्रतिशत भाग आता है। इस स्थल में तीन परतें है। प्रथम परत भू–पृष्ठ की है जिस परत की गहराई धरती से 100 कि.मी. है। इस परत में विभिन्न प्रकार की मिट्टियॉ व शैलें विध्यमान है। इस परत का औसत भाग 2.7 धनत्व है। दूसरी परत को उपचय मण्डल कहा जाता है, जिसकी गहराई स्थल मण्डल के नीचे 200 कि.मी. तक है तथा जिसमें सिलिकन और मैगनीशियम पदार्थो की प्रधानता है और इसका औसत धनत्व 3.5 ऑका गया है। तीसरी परत को परिणाम मण्डल कहते है, जिसे पृथ्वी का केन्द्रीय मण्डल कहा जाता है और कठोर धातुओं से बना हुआ है, जिसमें निकल नामक पदार्थ साथ–साथ लोहे की भी प्रधानता पाई जाती, जो इस धरती पर पाये जाने वाला सबसे ज्यादा पदार्थ है।

2. **जल मण्डल** –पृथ्वी का समस्त जलीय भाग जलमण्डल कहलाता है, जिसमें सभी सागर व महासागर सम्मिलित है। भूपटल के 71 प्रतिशत भाग पर जल एंव29 प्रतिशत भाग पर थल का विस्तार है। पृथ्वी की सतह पर क्षेत्रफल लगभग

51 करोंड वर्ग किलोमीटर है। जिसमें 36 करोंड वर्ग कि.मी. पर जल का विस्तार है।

3. **वायु मण्डल** –पृथ्वी के चारों ओर वायु का सैकडों किमी. मोटा आवरण है, जिसे वायुमण्डल कहा जाता है। पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण वायु का यह धेरा पृथ्वी को जकड़े हुए है, और धरातल से इसकी ऊंचाई साधारणतः 800 किलोमीटर मानी जाती है, परन्तु खोज के पश्चात् यह ऊंचाई 1300 किलोमीटर ऑकी गयी है। वायु मण्डल में भी अनेक परत होती है।

3.2.2 पर्यावरण प्रदूषण

पर्यावरण प्रदूषण से पहले हमें यह समझना होगा कि प्रदूषण क्या होता है। दूषित पदार्थो के कारण प्रकृति में जो समस्या उत्पन्न होती है, उसे प्रदूषण कहते हैं। और जब पर्यावरण के सभी घटक यथा वायु, जल, मृदा आदि प्रदूषित होने लगते हैं तो वे पर्यावरण प्रदूषण की श्रेणी में आ जाते हैं। पर्यावरण प्रदूषण आज की सबसे बड़ी समस्या है। जिसके लिए सभी का जागरुक होना अति आवश्यक है। जलवायु परिवर्तन के कारण हरितगृह (ग्रीनहाउस) प्रभाव और वैश्विक ताप में वृध्दि, ओजोन परत का क्षय होना, अम्लीय वर्षा होना, भूस्खलन, मृदा का क्षरण आदि चीजें होती हैं, जिसे पर्यावरण का प्रदूषित होना कहते हैं। मनुष्य ने अपने और पर्यावरणीय स्वास्थ्य की कीमत पर प्रकृति के धन का दोहन किया है। इसके अलावा, जो प्रभाव अब तेजी से उभर रहा है, वह सब सैकड़ों या हजारों वर्षों से मनुष्यों की गतिविधियों के कारण है।

इन सबसे ऊपर, अगर हम पृथ्वी पर जीवित रहना और अपना जीवन जारी रखना चाहते हैं, तो हमें उपाय करने होंगे। ये उपाय हमारी अगली पीढ़ी के भविष्य के साथ–साथ हमें सुरक्षित बनाने में मदद करेंगे।

पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार – प्रदूषण के प्रभाव निस्संदेह कई ओर व्यापक हैं। प्रदूषण के अत्यधिक प्रभाव से मानव स्वास्थ्य, पशु स्वास्थ्य, उष्णकटिबंधीय वर्षा–वन आदि को नुकसान पहुंच रहा है। वायु, जल, मिट्टी प्रदूषण आदि सभी प्रकार के प्रदूषणों का पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। निम्नलिखित मुख्य प्रकार हैं–

वायु प्रदुषण–वायु हमारे जीवन के लिए सबसे महत्वपूर्ण घटक है। हम बिना खाये पिये एक दो दिन रह भी सकते हैं, लेकिन बिना श्वास (वायु) के एक क्षण भी बिताना मुश्किल होता है। सोचिए अगर जिस वायु में हम सांस लेते है, वही प्रदूषित हो गया, तो हमारे लिए कितना विनाशकारी हो सकता है।

जल प्रदूषण –जल प्रदूषण तब होता है जब हानिकारक पदार्थ – जैसे रसायनों या फैक्ट्रियों का अपशिष्ट, झील, नदी, महासागर,या पानी के अन्य स्रोत में जाकर मिलते हैं। जब हम इसे पीतें हैं, तो ये हमारे शरीर को दूषित करते हैं, साथ ही पानी की गुणवत्ता को भी कम करते हैं । यही जल प्रदूषण कहलाता है।

भूमि प्रदूषण – वे पदार्थ जो मिट्टी के प्रदूषण का कारण बनता है और मिट्टी की गुणवत्ता को खराब करता है भूमि प्रदूषक के रूप में जाने जाते हैं। भूमि प्रदूषण अधिक मात्रा में कीटनाशकों, उर्वरकों, पेट्रोलियम हाइड्रोकार्बन, नाइट्रेट, अमोनिया, आदि रसायनों की उपस्थिति के कारण हो सकता है।

3.3 भूस्थानीय पर्यावरण, जलीय पर्यावरण, आकाश वायु संबंधी पर्यावरण एवं ज्योतिष

भूस्थानीय पर्यावरण एवं ज्योतिष –पंचमहाभूत रूपी प्रकृति में भूमि भी एक महाभूत है। पृथ्वी की उत्पत्ति तथा इससे संबन्धित विभिन्न विषयों का विचार ज्योतिष शास्त्र में विस्तृत रूप से किया गया है । ब्रमाण्ड में भूमि की स्थिति, प्रकृति, स्वरूप, परिधि प्रमाण आदि विषयों का विस्तृत विवेचन हमें प्राप्त होता है। पृथ्वी के आधुनिक ज्ञान से हम सभी अवगत है । वस्तुतः ज्योतिष शास्त्र के अनुसार पृथ्वी की शुभता एवं इसमें विद्यमान विभिन्न पदार्थ आदि का विवेचन हम प्रस्तुत शीर्षक के माध्यम से करेंगे ।पृथ्वी पर वृक्षों का विशेष महत्व होता है क्योंकि पर्यावरण को संतुलित करने में वृक्ष या वनस्पति आदि का महत्वपूर्ण योगदान होता है । वृक्षायुर्वेदाध्याय के प्रारम्भ में ही वराहमिहिर कहते हैं कि वापी, कूप, तालाब आदि जलाशयों के किनारे पर उद्यान या बगीचा लगाना चाहिए क्योंकि जल से परिपूर्ण स्थल यदि छाया रहित हो तो वे शोभा नहीं पाता।

बगीचे या उद्यान की स्थापना अथवा निर्माण हेतु कोमल भूमि अच्छी होती है। जिस भूमि में बगीचा (बहुत सारे वृक्ष) लगाना हो उसमें पहले तिल को बोना चाहिए, तथा इसके बाद जब वे तिल फूल जायें, तब उनको उसी भूमि में मर्दन कर देना चाहिए । यह क्रम भूमि का प्रथम संस्कार माना जाता है।

उद्यान में लगाने योग्य वृक्ष –सबसे पहले उद्यान या बगीचे में या घर के समीप चाहर दिवारी में अशोक, शिरीष, पुन्नाग, प्रियंगु (कुकुनी) के वृक्ष लगाने चाहिए । ये सभी शुभदायक माने जाते हैं । आचार्य वराहमिहिर के मत में ये सभी वृक्ष अरिष्टनाशक एवं मंगल फलदायक है।

अरिष्टाशोक पुन्नागशिरिषाः सप्रियंगवः।
मंगल्या पूर्वमारामे रोपणीया गृहेषु वा।।
(बृहत्संहिता,वृक्षायुर्वेदाध्याय श्लोक संख्या3)

वृक्ष रोपण की ऋतु –वृक्षों को रोपित करने के शुभ समय या ऋतु के विषय में आचार्य वराहमिहिर का मत है कि अजातशाखा अर्थात् कलमी से भिन्न जो वृक्ष होते हैं उनको शिशिर ऋतु (माघ–फाल्गुन) में लगाना चाहिए, एवं कलमी वृक्षों को वर्षा ऋतु (श्रावण – भाद्रपद) में लगाना चाहिए। **(बृहत्संहिता, वृक्षायुर्वेदाध्याय श्लोक संख्या6)**

वृक्ष रोपण के नक्षत्र –आचार्य वराहमिहिर के अनुसार तीनों उत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपद), रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, मूल, विशाखा, पुष्य, श्रवण, अश्विनी और हस्त ये नक्षत्र वृक्ष रोपने के लिये उत्तम माने जाते है। अर्थात् इन नक्षत्रों में ही वृक्ष रोपित करना चाहिए।
(बृहत्संहिता, वृक्षायुर्वेदाध्याय श्लोक संख्या31)

वृक्ष रोपने के नियम एवं विधि –ज्योतिष शास्त्र में वृक्षारोपण को एक पवित्र कार्य माना जाता है, इसी कारण आचार्य वराहमिहिर कहते हैं कि वृक्ष लगाने के पहले मनुष्य स्नान करके पवित्र होकर, चन्दन आदि से वृक्ष की पूजा करनी चाहिए तथा उसके बाद वृक्ष को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगावे। एक स्थान से वृक्ष को दूसरे स्थान पर ले जाने के पूर्व घृत, शहद, तिल, दूध, प्वस, गोबर इन सबको पीसकर मूल से लेकर अग्र पर्यन्त लेपकर वृक्ष को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जा सकते

हैं। ऐसा करने से पत्रों से युक्त वृक्ष लग जाता है अर्थात् वृक्ष कभी सूखता नहीं। यही प्रक्रिया ज्योतिष शास्त्र में वृक्ष को रोपने का विधान बताया गया है । **(बृहत्संहिता, वृक्षायुर्वेदाध्याय श्लोक संख्या7)**

वृक्ष सींचने का प्रकार एवं क्रम –वृक्ष सींचने का प्रकार एवं क्रम ज्योतिष शास्त्र में वृक्षों के रख रखाव अर्थात् सिंचन आदि का विधान बताया गया है इस विषय में आचार्य वराहमिहिर बताते हैं कि लगाये हुये वृक्षों को ग्रीष्म–ऋतु में सुबह–शाम एवं शीत ऋतु में एक दिन के बाद एक दिन छोड़ कर, वृक्षों में जल सींचना चाहिए।वर्षा ऋतु में यदि अल्पवृष्टि के कारण भूमि सूख जाये तब ही वृक्षों को जल देना चाहिए। **(बृहत् संहिता, वृक्षायुर्वेदाध्याय श्लोक संख्या9)**

इसी क्रम में अधिक जल वाले वृक्षों को लगाने के उपक्रम की जानकारी देते हुये वराहमिहिर कहते हैं कि जामुन, वेत, गूलर, अर्जुन, बिजौरा, पन्जुल, मक्तमाल, दाख, वानीर, कदम्ब, बडहर, दाडिम, तिलक, करहल, तिमिर, अटबाज ये सोलह प्रकार के वृक्ष, जलप्रद (अधिक जल वाले देश) भूमि पर लगाने चाहिए ।

वृक्ष लगाने के क्रम का विवरण देते हुये वराहमिहिर बताते है कि एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष के बीच, लगभग बीस हाथ का अन्तर होना चाहिए, सोलह हाथ का अन्तर मध्यम और बारह हाथ का अन्तर अधम माना गया है। वराहमिहिर कहते है कि यदि एक वृक्ष दूसरे वृक्ष के समीप होगा तो दोनों परस्पर स्पर्श करेंगे और दोनों की जड़े इकट्ठी होगीं। ऐसे में वृक्ष पीड़ित होते है तथा अच्छी तरह से फल नहीं देते।

कलमी वृक्ष लगाने का विधान –ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कलम लगाने के प्रकार व विधि इस प्रकार बताया गया है कि कटहर, जामुल, बडहर, दाडिम, दाख, अशोक, केला, पालीवत, बिजौरा, अतिमुक्तक, इन वृक्षों की शाखाओं को लेकर गोबर में लीप कर कटे हुये विजातीय वृक्ष की मूल या शाखा पर लगाकर जोड़ दें, इससे वहाँ नया वृक्ष उत्पन्न हो जाता है । यही प्रक्रिया कलम लगाने की ज्योतिष शास्त्र के अनुसार बतायी गई है। **(बृहत्संहिता, वृक्षायुर्वेदाध्याय श्लोक संख्या4–5)**

एक दिन में फलयुक्त पौधा लगाना –आचार्य वराहमिहिर ने 'वृक्षायुर्वेदाध्याय' में चमत्कारी वृक्ष–प्रकरण पर भी अत्यंत उत्कृष्ठ तरीके से प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि लसोडे के बीज के अंकोल फल के भीतर के जल से भावना देकर छाया में सुखा देना चाहिए। यह प्रक्रिया कुल सात बार करें। फिर उस बीज को भैंस के गोबर से घिसकर, भैंस के सूखे गोबर के ढेर पर रख दें। तत्पश्चात् ओलों से भीगी हुई मिट्टी में उन बीजों को बोना चाहिए जिससे एक दिन में फलयुक्त पौधा लग जायेगा।

इतना ही नहीं आचार्य वराहमिहिर ने तत्काल तत्क्षण पौधा उत्पन्न करने की विधि बताते हुये कहा है कि अंकोल वृक्ष के फल के कल्क (सार) या तेल से अथवा श्लेष्मातक (लसोड़े) के फल के कल्क या तेल से सौ बार भावना देकर, ओलों से भीगी हुई मिट्टी में जिस बीज को बोवें, वह उसी क्षण पैदा हो जाता है, तथा उसकी शाखा फलों के भार से झुक जाती है। बुद्धिमान् लोगों को इस पर आश्चर्य नहीं करना चाहिऐ।

वृक्षों में रोगोत्पत्ति के कारण व उनकी चिकित्सा –इस सन्दर्भ में ज्योतिष शास्त्र के वराहमिहिर कहते है कि अधिक शीत, वायु और अधिक धूप लगने से वृक्षों के रोग हो जाता है। रोगी वृक्षों के पत्ते पीले पड़ जाते है। अंकुर नहीं बढ़ते, डालिया सूख जाती है और रस टपकने लगता है।

ज्योतिष शास्त्र के आचार्य वराहमिहिर के अनुसार इन रोगी वृक्षों की चिकित्सा करनी चाहिये। पहले वृक्ष का जो अंग पूर्वोक्त विकार से युत हो, उसको शस्त्र से काट डालें, फिर वाय विडंग, घृत और कीचड़ को मिलाकर वृक्षों में लेप करें, बाद में मिश्रित जल से सीचें तो वृक्ष रोग मुक्त हो जायेगा।

वृक्ष पर यदि फल न लगे या फल लगकर नष्ट हो जाये तो ऐसी स्थिति में कुलथी, उड़द, मूंग, तिल, जौ इन सब को दूध में डालकर औटावें, फिर उस दूध को ठंडा करके, उससे वृक्ष में सीचें तो निश्चय ही उस वृक्ष के फल और फूलों में वृद्धि होगी। भेड़ और बकरी की मेंगन (भेड़ारी) का चूर्ण दो आठक, तिल एक आठक, सत्तू (सतुआ) एक प्रस्थ, जल एक द्रोण, इन सबको मिला कर एक पात्र में सात दिन तक रखें और तत्पश्चात् उससे वृक्ष गुल्म व लताओं को सींचे, निश्चय ही फल–फूल की वृद्धि होगी। यदि किसी वृक्ष पर पुष्प कठिनाई से लगते हों तो उस वृक्ष के बीज के घृत लगाये हुये हाथ से चुपड़ कर दूध में डाल दें। इस तरह दस दिन तक करता रहे। बाद में उस बीज के गोबर में अनेक बार मलकर छाया में सुखा देना चाहिए। इसके बाद सूखने पर सूअर और हिरण के मांस का धूप देवें। उस बीज के तिल बोकर शुद्ध–संस्कारित ही हुई जमीन पर लगावें एवं दूध मिश्रित जल से सींचे तो पुष्प युत वृक्ष उत्पन्न होगा। इसके साथ ही इमली के वृक्ष, कपित्थ के वृक्ष एवं अन्य अनेक प्रकार के वृक्षों को लगाने की विधि इस अध्याय मे भली–भाति समझाई गई है। ज्योतिष शास्त्र के आचार्य वाराहमिहिर को वृक्ष के ऊपरी सतह पर खिले फल–फूल, पुष्प–पत्ते व शाखाओं के बारे में, अपितु वृक्ष के भीतर, उसकी जड़ों के नीचे की वस्तु स्थिति का भी ज्ञान था। साथ ही साथ अमुक वृक्ष को खोदने पर कितने हाथ नीचे, क्या समस्या मिलेगी? इत्यादि विषयों पर भी आचार्य वराहमिहिर ने सम्पूर्ण वर्णन इन अध्यायों में किया है। ज्योतिष शास्त्र में ग्रह विशेष के लिए वृक्ष विशेष भी बतलाए गए हैं यथा–

ग्रह	संस्कृत नाम	स्थानीय हिन्दी नाम
सूर्य	अर्क	आक
चन्द्र	पलाश	ढाक
मंगल	खादिर	खैर
बुध	अपामार्ग	लटजीरा
बृहस्पति	पिप्पल	पीपल
शुक्र	औदुम्बर	गूलर
शनि	शमी	छयोकर
राहु	दूर्वा	दूब
केतु	कुश	कुश

इसके साथ ही साथ पृथ्वी (भूखंड) के विभिन्न लक्षणों के आधार पर इसके शुभाशुभत्व का विचार भी ज्योतिष शास्त्र में विस्तृत रूप से किया गया है।

जलीय पर्यावरणएवं ज्योतिष – ज्योतिष शास्त्र में पंचमहाभूतात्मक प्रकृति पर गहन चिंतन किया गया है। इन्हीं में से जलीय पर्यावरण का विशेष विचार किया गया है। सृष्टि उत्पत्ति या पर्यावरण की उत्पत्ति भी जल से ही मानी जाती है। हमारे जीवन में भी जल का विशेष महत्व है क्योंकि जल के अभाव में जीवन की संकल्पना कर पाना भी असंभव है। पृथ्वी में जल राशि के विद्यमान होने के कारण ही इस पर जीवन संभव है। यदि जल पर्याप्त मात्रा में न हो या प्रदूषित जल हो तो उससे हमारा जीवन अत्यधिक रूप से प्रभावित हो जाता है। वर्तमान में पीने योग्य जल के स्रोतों का अभाव

होता जा रहा है जिसके कारण पर्यावरण भी प्रभावित होता जा रहा है। ज्योतिष शास्त्र में कई ऐसी विधियाँ बताई गयी है जिनके माध्यम से हम जल रूपी स्त्रोत का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं तथा जल को शुद्ध करने की भी प्रक्रिया का ज्ञान कर सकते हैं जिससे जलीय पर्यावरण को हम संतुलित रख सकते हैं। भूमिगत जल के स्रोत को हम वराहमिहिर द्वारा वर्णित दकार्गल (बृहत्संहिता ग्रंथ का एक अध्याय)से ज्ञात कर सकते हैं। वस्तुतः दकार्गल का ज्ञान केवल भूमिगत जल का ज्ञान ही नहीं अपितु धर्म एवं यश सम्बन्धित पुरुषार्थ प्राप्ति का भी है जैसा कि आचार्य वराहमिहिर जी ने बृहत्संहिता' के दकार्गल अध्याय के आरम्भ में किया हैं–

धर्म्यं यशस्यं च वदाम्यतोऽहं दकार्गलं येन जलोपलब्धिः।
पुंसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः। ।
एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्युतं नभस्तो वसुधाविशेषात्।
नानारसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव । ।

(बृहत्संहिता दकार्गल अध्यायश्लोक संख्या 1–2)

जिसका ज्ञान होने पर भूमिगत जल का ज्ञान प्राप्त होता हैं, उस धर्म और यश को देने वाले 'दकार्गल' ज्ञान को मैं (ग्रन्थकार) कहता हूँ। जिस प्रकार मनुष्यों के अंग में नाड़ियाँ होती हैं, उसी प्रकार भूमि में भी उँची– नीची शिरायें होती हैं। आकाश से केवल एक स्वाद वाला जल पृथ्वी पर गिरता हैं, किन्तु वहीं जल पृथ्वी की विशेषता से तत् तत् स्थानों में अनेक प्रकार के रस और स्वाद वाला जल हो जाता हैं। इस प्रकार भूमि के वर्ण और रस के समान ही जल के भी रस और वर्ण सिद्ध होते हैं, अतः भूमि, वर्ण और रस का परीक्षण–पूर्वक जल के रस और स्वाद का परीक्षण करना चाहिये।'कोस कोस पर पानी बदले चार कोस पर वाणी' आज भी ग्रामीण परिवेश में बड़े वृद्धों से यह कहावत सुनने को यत्र तत्र मिल जाती हैं। अर्थ स्पष्ट हैं कि प्रत्येक कोस (3 कि.मी.) पर जल का स्वाद अन्तरित हो जाता है तथा बोलचाल की भाषा में भी प्रत्येक चार कोस अर्थात् 12 कि.मी. पर वाणी में अन्तर हो जाता हैं यह प्रकृति प्रदत्त हैं। दकार्गल ज्ञान के क्रम में सर्वप्रथम भूमि के शिराओं का ज्ञान होना परमावश्यक है जिससे जल के स्वाद तथा स्थिति का अनुमान होता है। पूर्व आदि आठ दिशाओं के क्रमशः इन्द्र, अग्नि,यम राक्षस, वरुण, वायु, चन्द्र और शिव स्वामी होते हैं। इन आठ दिक्पतियों के नाम से आठ (ऐन्द्री, आग्नेयी, याम्या, इत्यादि) ही शिरायें प्रसिद्ध हैं। इन आठ शिराओं के मध्य में महाशिरा नाम वाली नवमी शिरा है। इन नव शिराओं के अतिरिक्त अन्य भी सैकड़ों शिरायें निकली हैं, वह और पूर्व आदि चारों दिशाओं में स्थित शिरायें शुभ तथा अग्निकोण आदि विदिशाओं में स्थित शिरायें अशुभ होती हैं।

पुरुहूतानलयमनिऋतिवरुणपवनेन्दुकरा देवाः।
विज्ञातव्याः क्रमशः प्राच्याद्यानां दिशां पतयः।।
दिक्पतिसंज्ञा च शिरा नवमी मध्ये महाशिरानाम्नी।
एताभ्योऽन्याः शतशो विनिःसृता नामभिः प्रथिताः।।
पतालादूर्ध्वशिरा शुभा चतुर्दिक्षु संस्थिता याश्च।
कोणदिगुत्था न शुभाः शिरानिमित्तान्यतो वक्ष्ये।।

(बृहत्संहिता दकार्गल अध्याय श्लोक संख्या 3–5)

भूमि के शिराओं के लक्षण–

यदि वेतसोऽम्बुरहिते देशे हस्तैस्त्रिभिस्ततः पश्चात्।
सार्धे पुरुषे तोयं वहति शिरा पश्चिमा तत्र। ।

(बृहत्संहिता दकार्गल अध्याय श्लोक संख्या 6)

यदि जल रहित देश में जामुन का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ उत्तर दिशा में दो शिरा होती है। वहाँ पर भी खोदने के समय में कुछ चिह्न निकलते हैं, जैसे– एक पुरुष प्रमाण तुल्य नीचे लोहे पुरुषतुल्य नीचे पूर्व के समान गन्ध वाली मिट्टी, उसके नीचे कुछ सफेद मिट्टी और उसके नीचे मेढ़क और जल निकलता है।

चिरकाल तक जल पाये जाने वाली शिरा लक्षण–

जम्बूवृक्षस्य प्राग्वल्मीको यदि भवेत् समीपस्थः।
तस्माददक्षिणपार्वे सलिलं पुरुषद्वये स्वादु।।
अर्धपुरुषे च मत्स्यः पारावतसन्निभश्च पाषाणः।
मृद्भवति चात्र नीला दीर्घ कालं च बहु तोयम्।।

(बृहत्संहिता दकार्गल अध्याय श्लोक संख्या 9–10)

जामुन के वृक्ष से पूर्व की तरफ समीप में ही बॉबी हो तो उससे तीन हाथ दक्षिण दिशा में दो पुरुष मधुर जल मिलता है। आधा पुरुष प्रमाण नीचे मछली और उसके नीचे कबूतर के समान रंग वाला पत्थर निकलता है तथा इस खात में नील वर्ण की मिट्टी होती हैं और चिरकाल तक अधिक जल होता है।

स्वादु जल वाली शिरा लक्षण–

पश्चादुदुम्बरस्य त्रिभिरेव करैर्नरद्वये सार्धे।
पुरुषे सितोऽहि रश्मांजनोपमोऽधः शिरा सुजला।।

(बृहत्संहिता दकार्गल अध्याय श्लोक संख्या 11)

जलरहित देश में गूलर का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में ढाई पुरुष के लम्बाई के समान तक नीचे सुन्दर जल वाली शिरा होती है। यहाँ पर भी खोदने के समय कुछ चिह्न मिलते हैं, जैसे– आधा पुरुष खोदने पर सफेद सर्प, उसके नीचे काला पत्थर और उसके नीचे सुन्दर स्वादु जल वाली शिरा निकलती है।

खारे जल वाली शिरा लक्षण

जलपरिहीने देशे वृक्षः कम्पिल्लको यदा दृश्यः।
प्राच्यां हस्तत्रितये वहति शिरा दक्षिणा प्रथमम्।।
मृन्नीलोत्पलवर्णा कापोता दृश्यते ततस्तस्मिन्।
हस्तेण्जगन्धको मत्स्यकः पयोऽल्पं च सक्षारम् ।।

(बृहत्संहिता दकार्गल अध्याय श्लोक संख्या 21–22)

जहाँ निर्मल लम्बी डालियों से युत छोटे–छोटे विस्तृत वृक्ष हों वहाँ जल निकट में होता हैं और जहाँ अन्तःसार वाले, विवर्ण पत्ते वाले, रुखे वृक्ष हों, वहाँ जलाभाव होता है। जहाँ पर निर्मल वल्मीक से युत तिलक, आम्रतक (अम्बाड़ा), वरुणक (बरण), भिलावा, बेल, तेन्दुआ, अंकोल, पिण्डार, शिरीष, अंजन, पह्वषक (फालसा), अशोक, अतिवला – ये वृक्ष हों, वहाँ इन वृक्षों से तीन हाथ आगे उत्तर दिशा में साढ़े चार पुरुष नीचे जल होता है।

फलकुसुमविकारो यस्य तस्य पूर्वे शिरा त्रिभिर्हस्तैः।
भवति पुरुषैश्चतुर्भिः पाषाणोऽधः क्षितिः पीता।।

(बृहत्संहिता दकार्गल अध्याय)

जिस वृक्ष के फल–पुष्पों में विकार उत्पन्न हो, उस वृक्ष से तीन हाथ पर पूर्व दिशा में चार पुरुष नीचे शिरा होती है तथा नीचे पत्थर और पीली भूमि मिलती है।

मरुस्थल प्रदेश में शिरा लक्षण

अतृणे सतृणा यस्मिन् सतृणे तृणवर्जिता मही यत्र।
तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा वक्तव्यं वा धनं चास्मिन् ।।
कण्टक्यकण्टकानां व्यत्यासेणम्भस्त्रिभिः करैः पश्चात् ।
खात्वा पुरुषत्रितयं त्रिभागयुक्तं धनं वा स्यात्।।

(बृहत्संहिता दकार्गल अध्याय श्लोक संख्या52–53)

तृण रहित प्रदेश में कोई एक स्थान तृणयुक्त दिखाई दे अथवा तृणयुक्त प्रदेश में कोई एक स्थान तृणरहित दिखाई दे तो उस स्थान पर साढ़े चार पुरुष नीचे शिरा अथवा धन होता है। जहाँ काँटे वाले वृक्षों में एक बिना काँटे वाला अथवा काँटे वाले वृक्षों में एक काँटे वाला वृक्ष हो, वहाँ उस वृक्ष से तीन हाथ आगे पश्चिम दिशा में एक तिहाई युत तीन पुरुष नीचे जल या धन होता है।

वापी लक्षण– पूर्वापरा आयत वापी में जल दीर्घ समय तक स्थित रहता है। वापी सुदृढ होने चाहिये। वापी के किनारे लगाने योग्य वृक्ष, निचुल, जामुन, वेंत, नीप (एक तरह का कदम्ब)– इन वृक्षों के साथ अर्जुन, बढ़, आम, पिलखन, कदम्ब और बकुल के साथ कुरवक, ताड़, अशोक, महुआ, मौलसिरी, इन वृक्षों को वापी के तट पर लगाना चाहिये। (बृहत्संहिता दकार्गल अध्याय श्लोक संख्या 118–119)

दूषित जल को शुद्ध करने वाली औषधियाँ–

अंजनमुस्तोशीरैः सराजकोशातकामलकचूर्णैः।
कतकफलसमायुक्तर्योगः कूपे प्रदातव्यः।।
कलुषं कटुकं लवणं विरसं सलिलं यदि वा शुभगन्धि भवेत्।
तदनेन भवत्यमलं सुरसं सुसुगन्धि गुणैरपरैश्च युतम्।।

(बृहत्संहिता दकार्गल अध्याय श्लोक संख्या 121–122)

जो जल गन्दा, कडुआ, खारा, बेस्वाद या दुर्गन्ध वाला हो, उसमें अंजन, मोथा, खस, राजकोशातक, ऑवला, कतक का फल इन सबके चूर्ण वाली औषधि यदि उपर्युक्त जल में डाला जाय तो निश्चय ही वह जल निर्मल, मधुर, सुन्दर गन्ध वाला और अनेक गुणों से युक्त हो जाता है।

कूप खुदाई आरम्भ करने वाले प्रशस्त नक्षत्र–
हस्तो मघानुराधापुष्यधनिष्ठोत्तराणि रोहिण्यः।
शतभिषगित्यारम्भे कूपानां शस्यते भगणः।

(बृहत्संहिता दकार्गल अध्याय)

हस्त, मघा, अनुराधा, पुष्य, धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, शतभिषा– इन नक्षत्रों में कूप का आरम्भ करना शुभ होता है।

भारतवर्ष के ऐसे कई प्रान्त हैं, जहाँ जल की समस्या भीषण रूप में हैं, अतः यदि हमें जल की समस्या से निजात पाना हैं तो दकार्गल का ज्ञान कर इसका उपयोग करना होगा। इस प्रकार यदि ज्योतिष के कथनानुसार यदि हम भूमि के शिराओं के लक्षण को समझ लें तथा दकार्गल सम्बन्धित विभिन्न आयामों को कूप लक्षण, वापी लक्षण तथा कूप आरम्भ करने वाले प्रशस्त नक्षत्रों के ज्ञान की यथार्थ मीमांसा कर लें तथा प्रदूषित जल में प्रयोग किये जाने वाले औषधि का ज्ञान प्राप्त कर लें, तो जल की समस्याओं से हम समाधान निकालने में सफल हो सकेंगे, यह मेरा विश्वास हैं ।

आकाश, वायु सम्बन्धी पर्यावरण एवं ज्योतिष – ब्रह्माण्ड में व्याप्त अनंत आकाश का भी अपना एक पर्यावरण होता है। इस अनंत आकाश में ग्रह, नक्षत्र, तारा, निहारिका आदि विद्यमान है जिसमें हमारी पृथ्वी भी शामिल है। आकाश में इन सभी की स्थिति संतुलन आदि का हम भूलोक वासियों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। हम देखते हैं कि कई खगोलीय घटनाये आकाश में घटित होती हैं जिनका प्रभाव हम प्रत्यक्ष रूप से देख पाते हैं। जैसे उल्कापात, इंद्रधनुष,ग्रहण, आदि। साथ ही साथ पृथ्वी आदि समस्त आकाशीय पिंडों की स्थिति एवं गति को नियंत्रित करने के लिए सात प्रकार की वायु का वर्णन हमारे ज्योतिष शास्त्र में बताया गया है। जिनके नाम हैं –

आवहः प्रवहश्चौव उदहासो महांस्तथा। परीवहः पञ्चमश्च विवहश्च परावहः।।

1. आवह, 2. प्रवह, 3. उद्वह, 4. महान् (संवह), 5. परिवह, 6. विवह, तथा 7. परावह, ये सात प्रकार की वायु पृथ्वी के बाहर–बाहर आवरण हैं जो विभिन्न भागों में व्याप्त हैं। सृष्टि का विस्तार होने के साथ–साथ वायु के विभिन्न भेदों का भी विस्तार होता गया। ब्रह्माण्ड के बाद भूपिण्ड पर स्थित स्थावर–जङ्गम सृष्टि की श्वसन क्रिया एवं अस्तित्व की रक्षा के लिए प्राणादि पाँच प्रकार की वायु प्रयोग में आती है। इन वायु भेदों का व्यवहार समस्त जीव–जन्तु, लता–वृक्ष आदि सभी करते हैं। अर्थात् सबकी जीवन धारा वायु से जुड़ी हुई है। इसलिए सृष्टि के सर्वाधिक विकसित प्राणी मनुष्य के जीवन में सञ्चार का विस्तृत विवेचन आवश्यक हो जाता है। आयुर्वेद के अनुसार प्राण, अपान, व्यान, समान एवं उदान नामक ये पाँच वायु शरीर में रहकर जीवन की विभिन्न क्रियाओं का सञ्चालन करते हैं। प्राण वायु हृदय में, अपान वायु गुदा में, समान वायु नाभि में, उदान वायु कण्ठ में तथा व्यान नामक वायु पैर से सिर तक शरीर के सभी अङ्गों में भ्रमण करती है। यही वायु शरीर के किसी भी भाग में स्थित कफ एवं पित्त जन्य विकार को शरीर के अन्य भागों में उसी प्रकार पहुँचाती है जैसे आकाश में स्थित बादल के टुकड़े को वायु एक देश से दूसरे देश तक पहुँचा देती है। बादल स्वयं नहीं चलता, उसी प्रकार शरीरस्थ मल विकार तथा कफ और पित्त स्वयं नहीं चलते। उनके सञ्चार में वायु ही कारण होती है। कहा गया है–

पित्तः पङ्गुः कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ।। (सुखबोध)

अतः यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि ब्रह्माण्ड के साथ–साथ मानव शरीर में भी वायु का ही प्राधान्य है। आयुर्वेद में इसके महत्त्व को बतलाते हुए कहा गया है–

वायुरायुर्बलं वायुः वायुर्धाता शरीरिणाम् ।
वायुर्विश्वमिदं सर्वं प्रभुर्वायुः प्रकीर्तितः ।।(सुखबोध)

इस प्रकार हम सभी जानते हैं की वायु का स्वच्छ होना कितना आवश्यक है पर्यावरण के लिए । वायु में विकार होने से पर्यावरण प्रभावित हो जाता है।

हम विभिन्न आकाश स्थानीय खगोलीय घटनाओं एवं उनके प्रभाव को समझने का प्रयास करते हैं।

उल्कापात – हम प्रायः आकाश में किसी चमकीले तारे को टूट कर गिरता हुआ देखते हैं, वस्तुतः यह उल्का है, जो चमकीले कण–से बिखेरती हुई–सी पृथ्वी तल पर बड़े–बड़े कोयले या राख की आकृति में गिरती है। वराहमिहिर ने (1) धिष्ण्या (2) उल्का (3) अशनि (4) बिजली (5) तारा इन पाँच भेदों में उल्का को विभाजित किया। उल्का 15 दिन में, धिष्ण्या 15 दिन में, अशनि तीन पक्ष (पैंतालिस दिन) में, बिजली छः दिन में, इसी तरह तारा छः दिन में फल देती है। (बृहत्संहिता उल्कालक्षण अध्याय)

इन्द्रधनुष का विवेचन – वर्षा के समय मेघयुत आकाश में वायु में व्याप्त जलकणों से सूर्य किरण टकरा कर,अनेक वर्णयुक्त धनुषाकार जो दिखाई देता है, लोग उसी को इन्द्रधनुष कहते हैं।अखण्ड पृथ्वी में लगा हुआ, उज्ज्वल, निर्मल, अविकल, अनेक वर्ण युत, दो बार उदित या पश्चिम में स्थित इन्द्रधनुष दिखाई दे तो शुभ फल और बहुत वृष्टि करने वाला होता है। यदि अनावृष्टि के समय पूर्व दिशा में इन्द्रधनुष दिखाई दे तो वृष्टि और वृष्टि के समय दिखाई दे तो अनावृष्टि करता है। पश्चिम दिशा में स्थित इन्द्रधनुष सदा वृष्टि करता है। वराहमिहिर कहते हैं कि यदि रात्रि के समय पूर्व दिशा में इन्द्रधनुष दिखाई दे तो राजा को पीड़ित करता है तथा दक्षिण दिशा में दिखाई दे तो सेनापति, पश्चिम में प्रधान पुरुष और उत्तर में इन्द्रधनुष दिखाई दे तो मन्त्री का नाश करता है।''

उत्पातों के लक्षण – उत्पातों की व्याख्या करते हुये वराहमिहिर कहते हैं कि देवमूर्ति या देवस्थानों का बिना कारण फटना, अचानक उल्कापात, दिग्दाह, भयंकर वायु या धूलि संघात, यात्रा के समय गाड़ी का उलटना, बिना बादल के बरसात, विकारयुत वायु के साथ वृष्टि, बिना अग्नि की ज्वाला, रात्रि को इन्द्रधनुष दिखाई देना, सन्ध्या में विकार, वन में रहने वाले पशुओं का गांव में आना, अचानक वृक्ष की शाख टूट कर गिर जाना, एक जाति के पशु का दूसरी के साथ मैथुन करना, आकाश में तुरही का बजना, ऋतुओं के विपरीत लक्षण दिखाई देना तथा प्रकृति के विरुद्ध अनहोनी घटनाओं के घटित होने को उत्पात कहते हैं।

वातचक्र विवेचन– ज्योतिष शास्त्र में आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन वायु की परीक्षा का विधान है। क्योंकि इस दिन समुद्र के तरंगाग्र (मानसून) से चालित होने के कारण घूमती हुई, चन्द्र व सूर्य की रश्मियों का संस्पर्श करती हुई वायु आकाश में चलती है। कुशल दैवज्ञ इस वायु के प्रवाह व दिशा–विदिशा के भेद को ग्रहण करके पूरे वर्ष का विवेचन करते हैं। वराहमिहिर कहते हैं कि आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त समय में यदि पूर्वी हवा चले तो धन–धान्यों में समृद्धि, वसन्त ऋतु व शारदीय फसलें श्रेष्ठ होती हैं। अप्रतिहत गतिवाली वायु आग्नेय कोण की चले तो वर्ष पर्यन्त पृथ्वी अग्नि की ज्वाला से जलती रहे। दक्षिण दिशा की वायु चले तो मेघ कृपण मनुष्य की तरह थोड़ा जल छोड़ता है। नैऋत्य तरफ से हवा चले तो भूख, प्यास से मरे हुए मनुष्यों की हड्डियों के टुकड़ों से पृथ्वी प्रेत–वधू की तरह दिखलाई देती है। यदि हवा पश्चिम दिशा की हो तो धन–धान्य से उन्मत्त राजा लोग (महत्वकांक्षी व्यक्ति) आपस में युद्ध करते हैं, पृथ्वी रंजित रहती है। हवा यदि वायव्य कोण की हो तो विविध धान्यों की उत्पत्ति, प्रजाजन वर्षा के जल की धारा से आनन्दित रहते हैं एवं पृथ्वी पर सुख की बाहुल्यता रहती है। उत्तरदिशा की हवा भी पृथ्वी को जल से पूर्ण (तृप्त) कर देती है। वायु यदि ईशानकोण की चले तो फसलें सही समय पर होंगी एवं उत्तम होंगी। वर्षा से लोग आनन्दित रहेंगे। धर्ममार्ग पर चलता हुआ राजा शत्रुओं को वश में रखते हुये, ब्राह्मणों की रक्षा करेगा।''(बृहत्संहिता)

इस प्रकार दिग्दाह, भूकम्प–लक्षण, उल्कापात, इन्द्रधनुष, उत्पात, वातचक्र, परिवेष, रजोलक्षण, निर्घात, इत्यादि प्राकृतिक किं वा अप्राकृतिक घटनाओं को रोक पाना या नियन्त्रित करना मनुष्य के वश के बाहर की बात है, परन्तु यह सोचना कि विभिन्न उत्पातों की उत्पत्ति का क्या कारण है? और उनसे बचने के क्या उपाय करने चाहिए? करने चाहिए, यह चिन्तन मानवीय बुद्धि की श्रेष्ठता को लक्षित करता है, जो उसे अन्य प्राणियों से अलग खड़ा करता है। ज्ञान–विज्ञान वह खजाना है जो हमें इन कुदरती विपदाओं से बचने का मार्ग सुझाता है, यह निश्चय ही मानव–सभ्यता के लिये अमूल्य है। आर्ष वचनों अथवा निजी अनुभवों से अरिष्ट–कथन कर देना और बात है तथा अनाहूत अरिष्ट प्रसंगों से बचने का रास्ता सुझाना बिल्कुल अलग बात है। यहां विज्ञान की पूर्ण सार्थकता का प्रसंग खड़ा होता है। मान लें चिकित्सा विज्ञान हमें किसी

बीमारी के कारण और उपस्थिति के पूर्ण लक्षण देता है, परन्तु इलाज नहीं बताता तो ऐसा विज्ञान क्या काम का? एक डॉक्टर हमें बीमारी तो बता देता है, परन्तु उसे ठीक करने के उपाय नहीं सुझाता तो ऐसे डॉक्टर से क्या लाभ? निदान के बिना, निवृत्ति के उपाय न बतावें तो ज्योतिष की उपयोगिता पर प्रश्नवाचक चिन्ह लग जायेगा। यह बड़ी प्रसन्नता का विषय है कि ज्योतिष शास्त्र में विभिन्न प्राकृतिक प्रकोपों तथा अनाहूत–उत्पातों से बचने के लिये तन्त्र–मन्त्र, उपासना, यज्ञ व दान के माध्यम से उनके निराकरण के सटीक उपाय पूर्ण–विधान के साथ प्रस्तुत किये गये हैं।

3.3.1 पर्यावरण का मानव जीवन पर प्रभाव

मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष में पर्यावरण का विशेष प्रभाव रहता है। चाहे नैसर्गिक पर्यावरण हो या भौतिक प्रत्येक के असंतुलन से सुखमय मानव जीवन संभव नहीं हैं। प्राकृतिक पर्यावरण के प्रभावों को तो हमने उपर्युक्त बिन्दुओं के माध्यम से जानने का प्रयास किया कि किस प्रकार हमारे जीवन के लिए प्रकृतिक पर्यावरण का संतुलित होना आवाश्यक होता है इनके असंतुलित होने से हमारा जीवन बहुत अधिक प्रभावित हो जाता है। प्राकृतिक पर्यावरण को संतुलित करने में ज्योतिष शास्त्र का भी विशेष योगदान एवं उपयोगिता है।

प्राकृतिक पर्यावरण के साथ ही साथ भौतिक या मानव निर्मित पर्यावरण का भी मानव जीवन में बहुत अधिक प्रभाव रहता है चाहे फिर वह सांस्कृतिक पर्यावरण, आध्यात्मिक पर्यावरण, सामाजिक पर्यावरण, राजनैतिक पर्यावरण, दार्शनिकपर्यावरण, शैक्षिकपर्यावरण, तकनीकी पर्यावरण हो। इन सबका संतुलन भी बहुत अधिक मानव जीवन को प्रभावित करता है। यदि व्यक्ति के जीवन में उपर्युक्त पर्यावरण में असंतुलन हो जाए तो व्यक्ति किसी न किसी रूप से अवश्य प्रभावित रहता हैं क्योंकि इस मानव जीवन में व्यक्ति को सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक गुणों से युक्त होना आवश्यक होता है। यदि इन गुणों का अभाव होते है तो वह मानव जीवन में कई दुष्कृत्यों को संपादित करता है, जिससे समाज में कई अनैतिक कार्य होने लगते हैं, एवं समाज में एक भययुक्त वातावरण का निर्माण हो जाता है। वर्तमान काल में इस प्रकार के पर्यावरण के असंतुलन को हम प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं । लोगों का चारित्रिक पतन होता जा रहा है, झूठ, आतंकवाद, मानव, मानव का दुश्मन होता जा रहा है जिससे कि एक स्वस्थ समाज की संकल्पना में व्यवधान प्रतीत हो रहा है। इस प्रकार के पर्यावरण के असन्तुलन को संतुलित करने में हमारी सांस्कृतिक विरासत बहुत हद तक सफल है क्योंकि संस्कृत शास्त्रों के अध्ययन अध्यापन से मनुष्य ज्ञान तो प्राप्त करता ही है अपितु समाज में किस प्रकार जिया जाये एवं **सर्वे भवन्तु सुखिनः** की भावना का विकास भी स्वयं ही हो जाता है । इन सब में ज्योतिष शास्त्र का भी अपना विशिष्ट स्थान है। मानव जीवन के विभिन्न संस्कार हो या खगोलीय घटनाओं का शुभाशुभ फल कथन, किसी भी कार्य को शुभ काल में करने संबंधी ज्ञान हो या मानव शरीर के स्वास्थ्य संबंधी विकार का उपचार ग्रह उपासना आदि के माध्यम से ज्योतिष शास्त्र में किया जाता है। अतः ज्योतिष शास्त्र पर्यावरण विषयक ज्ञान एवं संतुलित वातावरण निर्माण में विशेष स्थान रखता है।

3.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हमने जाना कि पर्यावरण हेतु ज्योतिष शास्त्र की महती उपयोगिता है। पर्यावरण हमारे चारों तरफ विद्यमान आवरण है जो हमें प्रतिपल प्रभावित करता है। पर्यावरण मुख्यतः प्राकृतिक एवं मानवनिर्मित रूप से हमारे आसपास विद्यमान है इन दोनों का संतुलन होना ही स्वस्थ पर्यावरण कहलाता है परंतु आज के

युग में प्राकृतिक एवं मानव निर्मित पर्यावरण दोनों का संतुलन कहीं न कहीं ठीक नहीं है इसके असंतुलन को ठीक करना बहुत आवश्यक है। इन सभी विषयों में ज्योतिष शास्त्र की विशेष भूमिका है। चाहे हम स्थल मण्डल संबन्धित पर्यावरण की बात करें या जलीय पर्यावरण या आकाश स्थानीय पर्यावरण या वायु पर्यावरण या फिर मानव निर्मित पर्यावरण इनको हम ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान से संतुलित कर सकने में सफल हो सकते हैं । हमारे संहिता आदि ग्रंथों के माध्यम से इसके ज्ञान को हमने जाना । अतः पर्यावरण और ज्योतिष विषयक यह इकाई हमारे ज्ञान एवं पर्यावरण के प्रति जागरूकता के साथ–साथ ज्योतिष विषयक ज्ञान काप्रयोग पर्यावरण हेतु करने के लिए अत्यंत उपयोगी है ।

3.5 शब्दावली

पर्यावरण– परि + आवरण अर्थात् हमारे चारों ओर का आवरण।

परिभू–वेदों में पर्यावरण शब्द का समानार्थक शब्द।

मानव निर्मित– मानव के द्वारा जो निर्मित हो या किया गया हो उसे मानव निर्मित कहते हैं। जैसे राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक पर्यावरण आदि ।

प्राकृतिक पर्यावरण– प्रकृति में विद्यमान पर्यावरण जैसे जल, वृक्ष, वायु आदि ।

खगोलीय घटना–आकाश में घटित होने वाली घटनाएँ ।

3.6 उपयोगी पुस्तकें

नोट– ये ग्रन्थ किसी भी प्रकाशन एवं संस्करण के हो सकते हैं। अभिप्राय मूल से है।

1. सिद्धान्त शिरोमणि – भास्कराचार्य
2. बृहत्संहिता – वराहमिहिर
3. बृहज्जातक – वराहमिहिर
4. आचार्य वराहमिहिर का ज्योतिष में योगदान – डा भोजराज द्विवेदी
5. आर्यभटीय – आर्यभट्ट
6. भारतीय ज्योतिष – शिवनाथ झारखंडी
7. मुहूर्तचिंतमणि– श्री रामदैवज्ञ
8. सिद्धान्त ज्योतिष मंजूषा – प्रो0 विनय कुमार पाण्डेय
9. Internet / wikipedia

3.7 बोध प्रश्न

1. पर्यावरण के अर्थ एवं प्रकार को विस्तार से समझाइए ।
2. भूस्थानीय पर्यावरण एवं ज्योतिष के बारे में लिखिए।
3. पर्यावरण प्रदूषण के बारे में लिखिए।
4. जल ज्ञान की विधियों को लिखिए।
5. प्रस्तुत इकाई का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।